बुलंदशहर बलात्कार की घटना, एक राजनैतिक सुअवसर

कहावत है कि मक्खी खोजे घाव, नेता खोजे दांव। इसी तर्क के आधार पर भारतीय तंत्र व्यवस्था भी समाज में होने वाली किसी घटना विशेष पर मक्खियों के समान एकजुट होकर टूट पडती है। उ0प्र0 में नेशनल हाईवे पर कुछ अपराधियों ने एक कार यात्रियों को रोककर उन्हे लूट भी लिया तथा उनकी मॉ, बेटी के साथ बलात्कार भी किया। उ0प्र0 का हर राजनैतिक दल घटना को विलक्षण मानकर उस पर प्रतिकिया देने लगा, तथा आक्रोश व्यक्त करने लगा। यहॉ तक कि आन्दोलन की धमकी भी देने लगा। मायावती जी ने मुख्यमंत्री के त्याग पत्र की मांग कर दी तो मुख्यमंत्री अखिलेश यादव ने अनेक पुलिस अधिकारियों को सस्पेंड कर दिया। क्योंकि पुलिस अधिकारियों ने मुख्यमंत्री द्वारा घोषित चौबीस घंटे की समय सीमा में अपराधियों को गिरफ्तार करने में सफलता प्राप्त नहीं की। आश्चर्य ही है कि कोई मुख्यमंत्री किसी अपराध में गिरफ्तारी के लिए चौबीस घंटे की समय सीमा बांध देता है और उसके ऐसे आदेश की आलोचना न होकर प्रशंसा होती है। केन्द्र सरकार भी सक्रिय हुई। मीडिया भी अपने को तंत्र का ही एक भाग मानता हैं परिणाम स्वरुप वह भी मक्खियों के झुंड में शामिल हो गया। अच्छा हुआ कि पीडित महिला दलित नहीं थी। यदि दलित होती तो मक्खियों को और अधिक लाभ उठाने की सुविधा मिल जाती। फिर भी आजकल राजनेताओं के लिए महिला और बलात्कार के लाभ उठाने का सीजन चल रहा है। जो घटना यदि एक साथ जुड़ जाये तो सभी नेताओं में आगे निकलने की प्रतिस्पर्धा दिखने लग जाती है।

मेरा अपना अनुभव है कि पूरे देश में इस तरह की या इससे भी अधिक जघन्य बलात्कार की घटनाएँ आमतौर पर होती रही हैं जिन्हें तंत्र पिछले लम्बे समय से न तो रोक पा रहा है न ही उसकी रोकने की कोई योजना है। जैसी घटनाएँ पूरे देश में लगातार होती रहती है वैसी ही कोई घटना किसी बडे शहर के आसपास मुख्य मार्ग पर हो जाये तथा मीडिया भी सुविधाजनक तरीके से उसे हाइलाइट कर सके तो सभी राजनेता, मीडिया तथा न्यायालय उस घटना को आधार बनाकर इसमें अपनी सक्रियता की परीक्षा देने कूद पड़ते हैं। ऐसा लगता है जैसे कि उक्त घटना भारत में वर्षो बाद घटी हो तथा बहुत विलक्षण घटना के रुप में हो। मैं जानता हूॅ कि जो भी लोग इस घटना को आधार बनाकर उछलकूद करने का नाटक करते दिख रहे है उनमें से किसी एक का भी ऐसा रिकार्ड नहीं है जो ऐसी घटनाओं का वास्तविक समाधान करने की इच्छा शक्ति रखता हो। नाटक तो सिर्फ दर्शकों को मोहित करने के लिए ही होता है और ऐसा नाटक सब लोग इसलिए कर रहे है कि कहीं वे इस दौड़ में पिछड़ न जाये।

मैं आश्वस्त हूॅ कि कुछ दिनों में न्यायपालिका भी अपनी ताकत दिखाने के लिए इस युद्ध में कूदेगी। नेता लोग मुआवजा देने की मांग करेंगे। पीड़ित पक्ष मुआवजा लेने से इन्कार करेगा तथा अपराधियों को फांसी देने की मांग करेगा। धरना प्रदर्शन आत्महत्या की धमकी मुआवजा आदि सारे नाटक आजमाये जायेंगे। वकील दोनों पक्ष में खड़े होकर पैसा कमायेगे और मीडिया पांच दस वर्षो तक समय–समय पर इस घटना की याद दिलाता रहेगा। देश भर के अन्य बलात्कार पीड़ित लोग अपने भाग्य का रोना रोयेंगे कि उनका मामला उ0प्र0 की इस घटना की तरह क्यों नहीं उछल सका। निर्भयाकांड भी इसी तरह की मक्खियों के घाव पर भिनभिनाने के समान उछला था किन्तु न उसके बाद बलात्कार रुके न ही ऐसे मुद्दों को उछालने में अपनी भूमिका स्थापित करने वालों को कहीं कोई शर्म आयी। मैं आश्वस्त हूॅ कि साल छः महिने के बाद फिर से ये बेशर्म लोग कोई और घटना की प्रतीक्षा करेंगे जिसमें व्यक्ति भले ही बदल जाये किन्तु पात्र नहीं बदलेंगे।

प्रश्न उठता है कि क्या किया जाये? ऐसी घटनाओं को रोकने के लिए कुछ न कुछ तो करना ही चाहिए किन्तु स्पष्ट दिख रहा है कि हमारे नेताओं को समाधान करने में कोई रुचि नहीं हैं। उनका तो सिर्फ एक ही उददेश्य है कि महिला और पुरुष को दो अलग–अलग खेमों में बांटकर ये अपनी रोटी सेंकते रहें। मैं जानता हूॅ कि महिला सशक्तिकरण का नारा बिल्कुल खोखला और हानिकारक है लेकिन प्रधानमंत्री से लेकर विपक्ष के नेता, न्यायालय से लेकर राष्ट्रपति तक धर्मगुरु से लेकर मीडिया तक सभी एक स्वर से महिला उत्पीडन, महिला सशक्तिकरण जैसे शब्दों का अपने–अपने लाभ के लिए उपयोग कर रहे है। यदि ये सब एक बार भी इस शब्द से लाभ उठाने की कोशिश बंद कर दे तो बलात्कार का बहुत आसानी से समाधान हो सकता है। मैंने पिछले 50 वर्षो से कई बार दो प्रश्न पूछे–

1. महिला और पुरुष के बीच दूरी घटनी चाहिए या बढ़नी चाहिए? इसका अंतिम निर्णय कानून करेगा, समाज करेगा, या परिवार करेगा या व्यक्ति स्वयं।
2. बलात्कार कितने प्रतिशत व्यक्ति की मजबूरी है और कितने प्रतिशत उसकी इच्छा।

मेरा अनुभव है कि जब तक इन दो प्रश्नों पर गंभीर निष्कर्ष नहीं निकल जाते तब तक आप समाधान की दिशा में नहीं बढ़ पायेंगे। तंत्र से जुड़े लोग 60 वर्षो से समाधान का नाटक मात्र कर रहे है किन्तु कभी इन दो प्रश्नों पर

विचार मंथन नहीं करते, निष्कर्ष नहीं निकालते क्योंकि उन्हें न समाधान से मतलब है न निष्कर्ष से। उन्हें तो सिर्फ घाव देखते ही मक्खियों के समान टूट पड़ना है।

मैं स्पष्ट कर दूँ कि मैं महिला उत्पीडन, महिला सशक्तिकरण जैसे घातक विचारो तथा नारों के बिल्कुल विरुद्ध हूँ तथा इस संबंध में मैं किसी भी प्रश्नोत्तर में भाग लेने के लिए तैयार हूँ।

भारत की वर्ण व्यवस्था

यह निर्विवाद है कि भारत की अति प्राचीन सामाजिक व्यवस्था पूरी दुनिया की तुलना में अधिक विकसित तथा वैज्ञानिक थी। उस समय भारत वैज्ञानिक मामलों में भी दुनियां में उपर था, सामाजिक मामलों में तो था ही। सामाजिक व्यवस्था में सबसे अधिक महत्व वर्ण व्यवस्था का था। वर्ण व्यवस्था का अर्थ यह था कि प्रत्येक बालक को बचपन में ही उसकी प्रवृत्ति का आकलन करके उसे उस दिशा में बचपन से ही प्रशिक्षित किया जाता था।

किसी भी बालक की प्रवृत्ति में तीन परिस्थितियों का समावेश होता है– 1. जन्म पूर्व के संस्कार 2. पारिवारिक वातावरण 3. सामाजिक परिवेश। जन्म पूर्व के संस्कार पैतृक होते है या पूर्व जन्म के या दोनों ही मिलकर यह अब तक स्पष्ट नहीं है किन्तु जन्म पूर्व के संस्कार प्रवृत्ति को प्रभावित करते है, यह सत्य है। जन्म के बाद बचपन के संस्कारों में परिवार का प्रभाव पड़ता है तथा 6 से लेकर 12 वर्ष की उम्र के बाद सामाजिक प्रभाव भी पड़ना शुरु हो जाता है। यही कारण है कि अति प्राचीन समय में प्रवृत्ति का आकलन करते समय 6 से लेकर 12 वर्ष तक की उम्र ही मानी जाती थी। इस कालखण्ड में जिस बालक में जो प्रवृत्ति अधिक प्रभावी दिखती थी। उसे उसी दिशा में ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य के नाम से कहा जाता था। जिस बालक में चिंतन का प्रभाव अधिक होता था, जो मरने से न तो डरे किन्तु मारने से अलग रहे तथा जो किसी दूसरे पर अपनी बात बलपूर्वक थोपने को एक बुराई समझे उसे ब्राहमण प्रवृत्ति मान लिया जाता था। ऐसा बालक शांत गंभीर ज्ञान और त्याग से भरपूर माना जाता था। इसके ठीक विपरीत युद्ध प्रिय, मरने मारने को तैयार दूसरों पर शासन करने की इच्छा रखने वाला क्षत्रिय कहा जाता था। ऐसा बालक निडर साहसी प्रवृत्ति का माना जाता था। इन दोनों के विपरीत जो मरने मारने से भी डरे, तथा दूसरों पर अपनी बात न थोपता हो उसे वैश्य मानते थे। ऐसा बालक चालाक लोभी डरपोक माना जाता था। जो बालक श्रम प्रधान होता था बुद्धिप्रधान नहीं, उसे श्रमजीवी मानकर शूद्र रहने दिया जाता था। यह व्यवस्था बहुत अच्छी थी तथा समाज में सफलतापूर्वक चल रही थी। इन सबमें भी ब्राहमण प्रवृत्ति को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था तथा शूद्र प्रवृत्ति को सबसे कम महत्व दिया जाता था। आश्रम व्यवस्था में भी वर्णव्यवस्था का समावेश था। अर्थात ब्राहमण को अंतिम समय में सन्यास तक जाना चाहिए था। जबकि क्षत्रिय वानप्रस्थ तक था, वैश्य और शूद्र गृहस्थ तक थे। कुछ ऐसे भी प्रमाण मिलते है कि अति प्राचीन काल में नस्ल सुधार को भी बहुत महत्व दिया जाता था। जिसका अर्थ था कि निम्न वर्ण की लड़की उच्च वर्ण के लड़के के साथ संयोग करके संतान पैदा कर सकती थी, किन्तु निम्न वर्ण का लड़का उच्च वर्ण की लड़की के साथ सम्पर्क करके संतान पैदा नहीं कर सकता था। प्राचीन समय में ऐसी भी व्यवस्था थी कि ब्राहमणों के साथ किसी भी प्रकार का बल प्रयोग अनुचित था। दूसरी ओर ब्राहमण को सम्मान के अतिरिक्त कोई राजनैतिक पद अथवा धन रखने पर पूरी तरह प्रतिबंध था। हर आदमी अपनी–अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कार्य करने की अपनी अंतिम सीमा समझता था और कोई व्यक्ति किसी दूसरे की प्रवृत्ति की नकल नहीं करता था। स्पष्ट है कि वर्णव्यवस्था भारत के अतिरिक्त दुनियां के अन्य देशों में लगभग न के बराबर थी।

वर्णव्यवस्था प्रवृत्ति और गुण को आकलित करके बनती थी। जबकि जाति व्यवस्था वर्णव्यवस्था के अन्तर्गत अलग–अलग कार्यो में संलग्न व्यक्तियों की होती थी। ब्राहमणों में भी कार्य के अनुसार पुजारी द्विवेदी या अन्य जातियां थी। यहॉ तक कि ब्राहमणों में ही महाब्राहमण की भी एक जाति थी। इसी तरह क्षत्रियों में तथा वैश्यों में भी जातियॉ उपजातिया बनी हुई थी। जो लोग सामाजिक व्यवस्था का घोर उल्लंघन करते थे, उन्हें भी किसी प्रकार का दण्ड नहीं दिया जा सकता था किन्तु उनका सामाजिक बहिष्कार करने की प्रथा थी। और ऐसे ही बहिष्कार के अन्तर्गत सामाजिक दण्ड स्वरुप अलग किये गये लोग अछूत कहे जाने लगे।

वर्णव्यवस्था में लम्बे समय बाद रुढिवाद आया और वर्णव्यवस्था योग्यता तथा प्रवृत्ति का आकलन किये बिना जन्म के आधार पर ही घोषित होने लगी। यह विकृति उच्च वर्ण वालों की धूर्तता के कारण आयी अथवा स्वाभाविक रुप से शिथिलता के कारण यह कहना कठिन है किन्तु यह विकृति आयी अवश्य। इसी तरह जो लोग सामाजिक बहिष्कार के आधार पर अछूत कहे गये उनके आगे आने वाली पीढ़िया भी अछूत रह गई। यह भी एक विकृति थी। कोई परम्परा जब रुढ़ि बन जाती है तो वह परम्परा विकारग्रस्त हो जाती है तथा उसके परिणामस्वरुप सामाजिक व्यवस्था छिन्न भिन्न हो जाने लगती है। सामाजिक व्यवस्था की इस विकृति का ही परिणाम था कि भारत धीरे–धीरे गुलामी की ओर चला गया क्योंकि अयोग्य लोग अपने को ब्राहमण या धर्मगुरु घोषित करके पूज्य बनने लगे तथा

अच्छे–अच्छे योग्य लोग भी शूद्र से आगे नहीं बढ़ सके। राजा के पुत्र स्वाभाविक रुप से राजा बनने लगे भले ही उनमें कायरों से भी अधिक बड़ा दुर्गुण क्यों न ही। चिंतन भी बंद हो गया तथा सुरक्षा भी कमजोर हो गई। गुलामी काल का परिणाम हम सब देख रहे है।

ऐसे ही गुलामी के कालखण्ड में स्वामी दयानंद सरीखे कुछ महापुरुषों ने इस विकृति को समझा और जन्म के आधार पर वर्ण और जाति को अस्वीकार करके प्रवृत्ति और कर्म के आधार पर सामाजिक मान्यता दिलाने की कोशिश की। महात्मा गांधी ने उस कोशिश को और आगे बढाया और ऐसा लगा कि बहुत कम समय में वर्णव्यवस्था में जन्म का आधार हटकर प्रवृत्ति और कर्म का प्रवेश हो जायेगा। किन्तु भीमराव अम्बेडकर, पं0 नेहरु, सरदार पटेल सरीखे सत्ता लोलुप लोगों को यह सुधार पसंद नहीं आया क्योंकि ऐसा सुधार समाज को तोड़ने और सत्ता को मजबूत करने में बाधक था। इन राजनेताओं ने संयुक्त रुप से वर्णव्यवस्था की सामाजिक विकृतियों को सुधारने की अपेक्षा उनका राजनैतिक लाभ उठाने का प्रयास किया। ऐसे ही प्रयास को उन हिन्दू सवर्णो का भी भरपूर समर्थन मिला जो अयोग्य होते हुए भी पूज्य बनकर समाज में रहना चाहते थे। इस तरह दो अलग–अलग समुहों ने गांधी और दयानंद के प्रयत्नों का भरपूर विरोध किया। दयानंद पूर्व से ही चले गये थे तथा गांधी भी भेज दिये गये और आगे इन दोनों गुटों को वर्णव्यवस्था की बीमारियों का लाभ उठाने का पूरा–पूरा अवसर मिला। गायत्री परिवार के श्री राम शर्मा ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयत्न किये किन्तु उनके जाने के बाद वे प्रयत्न भी रुढ हो गये। आज स्थिति यह है कि भारत इस वर्णव्यवस्था के न सुधार करने की स्थिति में है न समाप्त करने की स्थिति में है, बल्कि भारत तो सिर्फ एक ही स्थिति में है कि जन्मना वर्ण और जाति को लगातार मजबूत करके दो पक्ष आपस में टकराने का ऐसा नाटक करते रहे कि समाज धीरे–धीरे दो गुटों में बटकर उनका गुलाम हो जाये।

यदि हम पूरी दुनियां का आकलन करें तो भारत की व्यवस्था ही एक मात्र ऐसी सामाजिक व्यवस्था थी जिसमें प्रवृत्ति योग्यता और क्षमता के अनुसार कार्य विभाजन था। उसमें भी ज्ञान और त्याग को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। यदि हम इस्लामिक व्यवस्था का आकलन करे तो उनमें क्षत्रिय गुण प्रधान दिखता है। यदि हम पाश्चात्य संस्कृति का आकलन करे तो वह वैश्य गुण प्रधान दिखती है तथा साम्यवाद तो पूरी तरह शूद्र गुण प्रधान है ही। भारतीय संस्कृति को छोड़कर किसी भी अन्य संस्कृति में चारों गुणों का सामांजस्य नहीं दिखता। किन्तु दुर्भाग्य है कि आज भारत के ही स्वार्थी राजनेता और धर्मगुरु वर्णव्यवस्था को गाली देने तक ही अपने को सीमित रखते है जबकि वर्णव्यवस्था समाज व्यवस्था की सबसे सशक्त इकाई है।

अब वर्णव्यवस्था में सुधार संभव नहीं दिखता दूसरी ओर वर्णव्यवस्था को जीवित करने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग भी नहीं है। मेरे विचार में इन दोनों विपरीत स्थितियों से बचने का एक तरीका हो सकता है कि हम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जैसे रुढ और बदनाम हो चुके नामों से किनारा कर ले। दूसरी ओर हम 6 से 12 वर्ष तक के बालकों की एक ऐसी परीक्षा प्रणाली का विकास करे जो उनकी प्रवृत्ति के आधार पर उन्हें अलग–अलग दिशाओं में भेजने की संस्तुति करें। आज हम अपने प्रशासनिक कार्यों के लिए आई.ए.एस., आई.पी.एस सरीखी परीक्षाएँ आयोजित करते है। इसी तरह यदि बचपन से ही प्रवृत्ति के आधार पर विद्वान राजनीतिज्ञ, व्यवसायी, श्रमिक सरीखा विभाजन करके उन्हें बचपन से ही अलग–अलग प्रशिक्षण दिया जाये तो सामाजिक व्यवस्था में बदलाव आ सकता है। हम ऐसी भी व्यवस्था कर सकते है जिसके अनुसार विधायिका में विद्वान, कार्यपालिका में राजनीतिज्ञ व्यवसाय में वैश्य तथा श्रमिक के कार्यो में श्रमिक श्रेणी के लोगों को ही प्रवेश अनिवार्य कर दिया जाये। कोई अन्य श्रेणी का व्यक्ति किसी दूसरी श्रेणी के कार्य में प्रवेश उसी तरह वर्जित होगा जैसे आई.ए.एस. की परीक्षा पास करना आई.ए.एस. के लिए अनिवार्य है या डॉक्टर के लिए प्रारंभ में ही बायलॉजी अनिवार्य हैं। हो सकता है इस सुधार से वर्णव्यवस्था को नए परिवेश में जीवित किया जा सकता है। मैं जानता हूँ कि कोई भी राजनेता अथवा अयोग्य सवर्ण इस संशोधन को स्वीकार नहीं करेगा किन्तु मुझे विश्वास है कि समाज का बहुमत वर्णव्यवस्था को पुनर्जीवित करने के लिए इस सुझाव पर अवश्य चर्चा करने को तैयार होगा।

असली नकली गोरक्षक

परम्पराएँ जब रुढिवाद में बदल जाती है तब घातक होती है। ऐसी रुढियों के आधार पर जब कोई संगठन बन जाते है तो ऐसे संगठन समाज के समक्ष समस्या बन जाते है। ऐसे संगठनों का जब सत्ता के साथ तालमेल होता है तो ऐसे संगठन हिंसा की तरफ बढ़ने लगते है और हिंसा पर विश्वास करने वाले ऐसे संगठन जब किया करना शुरु करते है तब ऐसे संगठन नासूर के रुप में बन जाते है, जिनका प्रशासनिक तरीके से ऑपरेशन ही संभव है, कोई अन्य तरीका नहीं।

दुनियां में इस्लाम को रुढिवाद, संगठन तथा हिंसा पर विश्वास के लिए सर्वाधिक खतरनाक माना जाता है। यदि ऐसे इस्लाम का सत्ता से तालमेल हो जाये तो फिर न्याय और शांति की कल्पना ही नहीं की जा सकती। ऐसे तालमेल में कोई अन्य कभी भी शांति से नहीं रह सकता। यहॉ तक कि इस्लाम को मानने वाले व्यक्ति भी यदि इस तालमेल को स्वीकार न करें तो वे भी शांति से नहीं रह सकते। भारत में पिछले 60 वर्षो से ऐसे रुढिवादी संगठित हिंसा पर विश्वास करने वाले इस्लाम का सत्ता से आंशिक तालमेल था, पूर्ण तालमेल नहीं। हम उस कालखण्ड का इतिहास भी देख चुके है जब इस्लाम को न मानने वाले इसी लोकतांत्रिक भारत में दूसरे दर्जे के नागरिक सरीखा रहा करते थे। अब नरेन्द्र मोदी के आने के बाद वह तालमेल टूटा है।

रुढिवाद संगठन हिंसा पर विश्वास सिर्फ इस्लाम की ही एकमात्र बपौती नहीं हैं। हिन्दुओं में भी ऐसे लोग है जो इस इस्लामिक मार्ग का अनुसरण करते हैं, भले ही वे चोटी क्यों न रखते हो, जनेयू क्यों न पहनते हो, गाय, गंगा ,मंदिर पर ही अपनी रुढिवादी आस्था क्यों न व्यक्त करते हो। किन्तु यदि वे रुढिवादी है, संगठित है, हिंसा पर विश्वास करते है तथा सत्ता से तालमेल का प्रयास करते है तो ऐसे इस्लामिक और हिन्दुत्ववादी संगठनों में कोई भेद नहीं किया जा सकता। जबसे मोदी जी आये है तब से हिन्दू महासभा और शिवसेना जैसे इस्लामिक प्रवृत्ति वाले संगठनों का मनोबल बढा हुआ है। संघ परिवार अवश्य दुविधा में रहता हैं।

गाय, गंगा, मंदिर की सुरक्षा वैज्ञानिक आधार पर हिन्दुत्व की मान्यता प्राप्त परम्परा है, रुढिवादी नहीं। यदि हिन्दुत्व बचेगा तब इन तीनों का परम्परावादी अस्तित्व बचेगा। किन्तु यदि ये तीनों बच भी गये और हिन्दुत्व ही नहीं बचा तो इन तीनों का अस्तित्व नहीं बचेगा। दुर्भाग्य है कि भारत में अनेक साम्प्रदायिक संगठन हिन्दुत्व के स्थान पर गाय, गंगा, मंदिर को ही अपनी प्राथमिक पहचान मानकर संघर्ष कर रहे हैं।

मैं पहले से मानता रहा हूॅ और अब भी मानता हूॅ कि गाय, गंगा, मंदिर के संबंध में कानूनी समाधान खोजे जाने चाहिए, इन्हें आस्था के साथ विज्ञान को जोड़कर देखा जाना चाहिए। इनकी सुरक्षा के लिए सामाजिक टकराव उचित नहीं। देशभर में नरेन्द्र मोदी के आने के बाद कानूनी दृष्टि से गोरक्षा का वातावरण बनता दिख रहा है, किन्तु रुढ़िवादी संगठन, जो हिंसा पर विश्वास करते है, उन्हें परिणाम की अपेक्षा अपने संगठन के अस्तित्व की अधिक चिंता रहती है। यही कारण है कि वे स्वाभाविक रुप से समस्या का समाधान न होने देकर अपना हस्तक्षेप करते रहते है। ऐसे लोग इस्लामिक परम्परा के माने जाते है।

मैंने अपने जीवन में तीन गोरक्षक घटनाओं को देखा है। मेरे एक पूॅजीपति मित्र कहीं बड़ी गोशाला चलाते है। उन्होंने कसाई खाने जा रही गायों को बलपूर्वक छीन कर अपनी गोशाला में शामिल किया। उन गायों में भी बुढी बीमार, गायों की अपेक्षा स्वस्थ दूध देने वाली गायों को छीनने को प्राथमिकता दी। उन्होंने इस संबंध में प्रशासन से भी तालमेल बिठाया। मेरी नजर में एक दूसरी गौशाला है जिसके सारे प्रबंधक भी बड़े–बड़े करोड़पति, अरबपति हैं। इन लोगों ने भी एक बार हरियाणा से आ रही दूध देने वाली तथा छोटे बच्चे वाली 15 स्वस्थ गायों को किसी तकनीकी कमी के कारण पुलिस से मिलकर रुकवा लिया तथा अपनी गोशाला में शामिल कर लिया सिद्ध हो गया कि गायें व्यापारिक तरीके से जा रही थी, कसाई खाने के लिए नहीं। यह भी सिद्ध हो गया कि ये व्यापारी गरीब है तथा कर्ज लेकर गायों का व्यापार करते है। सारी बातें हरियाणा तक से पता लगातार सिद्ध हो गई। अन्त में गोशाला के ही कुछ दयावान लोगों ने दया करके पॉच गाय वापस करने का प्रस्ताव रखा जो गाय के व्यापारियों ने स्वीकार कर लिया किन्तु हमारे गोरक्षक बहुमत ने वह प्रस्ताव भी अस्वीकार कर दिया और बड़ी बेरहमी से सभी पन्द्रह गायें अपनी गोशाला में शामिल कर ली। एक तीसरी घटना मैंने देखी कि कुछ कसाई या व्यापारी छत्तीसगढ़ से बैल ले जा रहे थे जिन्हें पुलिस वालों ने किसी तकनीकी आधार पर जप्त कर लिया। एक पूॅजीपति, धर्म प्रेमी, ने उन बैलों को अपनी स्वनिर्मित गोशाला में सुपुर्दनामा पर ले लिया और सारे बैल बेच दिये क्योंकि उनके पास कोई भौतिक गोशाला नहीं थी, सिर्फ कागजी ही थी। मैं स्पष्ट कर दूॅ कि तीनों घटनाओं में बड़े–बड़े अग्रवाल पूॅजीपति धर्मप्रेमी, गोभक्त, शामिल थे। मैं जानता हूॅ कि तीनों घटनाओं में इन पूॅजीपतियों का कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं रहा होगा किन्तु गाय का नाम सुनते ही सब प्रकार के अत्याचार करने की प्रेरणा किसी भी दृष्टि से हिन्दुत्व नहीं मानी जा सकती।

जब तक गोरक्षा के नाम पर मुसलमानों के साथ टकराव हो रहा था तब तक संघ परिवार को कोई चिंता नहीं थी किन्तु मैं आश्वस्त था कि साम्प्रदायिकता की कोई सीमा नहीं होती और यदि उसे प्रांरभ में ही नहीं रोका गया तो वह ऑपरेशन की स्थिति तक बढ़ सकती है। यदि गोरक्षकों के मुसलमानों के साथ होने वाले गैरकानूनी टकराव को रोक दिया जाता तो आज यह स्थिति नहीं आती जो आज आयी और गोरक्षकों का मनोबल बढ़ते–बढ़ते दलितों तक आ गया जो संघ परिवार के लिए भी एक चिंता का आधार बना। मोदी जी ने जो कहा वह ठीक कहा बल्कि इससे भी

अधिक कड़ा संदेश देना चाहिए था। इतना अवश्य है कि यह संदेश यदि मुसलमानों के साथ टकराव के समय ही दे दिया जाता तो अधिक अच्छा होता।

हम देख रहें है कि कुछ गोरक्षक मोदी जी के संदेश को समझने की अपेक्षा विरोध करने की ओर बढ़ रहे है। मोदी जी के पहले जो गोरक्षक चूहे के समान बिलों में घुसे हुए थे, जिनकी बोलने की हिम्मत नहीं थी, वही चूहे अब बिलों से निकलकर मोदी जी को ही धमकाने की दिशा में बढ़ रहे हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि यदि इन लोगों ने संगठित विरोध किया तो मोदी जी को कोई नुकसान नहीं होगा। क्योंकि मोदी जी की नीयत साफ है, दिशा ठीक है, प्रयत्न ठीक है। यदि ये लोग विरोध भी करेगे तो उन्ही शक्तियों से इन्हें हाथ मिलाना पड़ेगा जिनके विरुद्ध खड़े होकर ये अपना अस्तित्व बचाना चाहते है। स्वाभाविक है कि ये आत्महत्या नहीं करेंगे और यदि करेंगे भी तो मोदी जी को कोई नुकसान नहीं होगा क्योंकि एक कहावत मैने सुनी है कि यदि वैश्या नाराज हो जाये तो धर्म बचता ही है नष्ट नहीं होता।

प्रश्नोत्तर

मैंने वर्णव्यवस्था पर एक बड़ा लेख लिखा था उस लेख के संदर्भ में कुछ प्रश्न उठाये गये है जिनका उत्तर देना आवश्यक हैं–

1– वर्णव्यवस्था के संदर्भ में संविधान निर्माता राजनेताओ से भूल हुई या उनकी नीयत खराब थी?

उत्तरः–मेरे विचार से उस समय के राजनेताओ की नीयत खराब थी। संविधान निर्माताओं ने वर्णव्यवस्था में संशोधन का कोई सुझाव नहीं दिया। वर्णव्यवस्था को जन्म की अपेक्षा कर्म के आधार पर आगे बढ़ाना चाहिए था किन्तु इसके ठीक विपरीत हमारे राजनेताओं ने वर्णव्यवस्था को जन्म के आधार पर मान्यता दे दी। बल्कि उन्होंने वर्णव्यवस्था में सुधार के स्थान पर वर्ग निर्माण, वर्ग विद्वेष को प्रोत्साहित किया। गांधी वर्णव्यवस्था को जन्म की अपेक्षा कर्म के आधार पर सुधारना चाहते थे तथा वर्ण विद्वेष की जगह वर्ग समन्वय चाहते थे। इसके साथ ही गांधी ग्राम को संवैधानिक अधिकार और मान्यता देकर जाति, धर्म को अमान्य करने के पक्षधर थे। हमारे संविधान निर्माताओं ने गॉव, जिले को संविधान से बाहर करके धर्म और जाति को संवैधानिक मान्यता दे दी। दुनियां जानती है कि संविधान बनाने वालो में अधिकांश ऐसे लोग थे जो गांधी के विचार से सहमत नहीं थे।

2– वर्णव्यवस्था में परीक्षा होती थी तथा छः से बारह वर्ष की उम्र मानी जाती थी। इसका प्रमाण है क्या?

उत्तरः– वर्णव्यवस्था में आठवें वर्ष में ब्राह्मण, दसवें वर्ष में क्षत्रिय तथा बारहवें वर्ष में वैश्य घोषित किया जाता था तथा पहचान स्वरुप उसे यज्ञोपवीत दिया जाता था। शूद्र भी सवर्ण होता था किन्तु उसे कोई यज्ञोपवीत नहीं दिया जाता था। मेरे पास कोई प्रमाण तो नहीं है किन्तु परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि परीक्षा होती थी तथा यज्ञोपवीत दिया जाता था जो बाद में रुढ़ बन गया तथा जन्म अनुसार दिया जाने लगा।

3– आपने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, की परीक्षा लिखी किन्तु शूद्र को छोड़ दिया, ऐसा क्यों?

उत्तरः–जन्मना जायते शूद्रः के अनुसार जन्म से लेकर यज्ञोपवीत तक प्रत्येक बालक शूद्र होता था तथा यदि यज्ञोपवीत नहीं मिला तो वह शूद्र ही रह जाता था। शूद्र का अर्थ श्रमजीवी होता था। अछूत शूद्र नहीं होता था बल्कि अवर्ण होता था। आमतौर पर सवर्ण ही दण्ड स्वरुप अछूत बनते थे।

4– आपने वैश्य को लोभी और चालाक लिखा ऐसा क्यों?

उत्तरः–मैंने एक कहानी सुनी है जिसके अनुसार एक कसाई किसी गाय को हत्या करने के लिए दौड़ा रहा है और गाय ओझल हो जाती है। वह कसाई ब्राह्मण से पूछता है तो ब्राह्मण झूठ बोल नहीं सकता है ,बल प्रयोग कर नहीं सकता और ब्राह्मण सिर्फ उसे उपदेश और प्रवचन की सीमा में रहकर ही गाय की जान बचाने की कोशिश कर सकता है। कसाई की भेट क्षत्रिय से होती है तो क्षत्रिय झूठ नहीं बोल सकता, प्रवचन नहीं दे सकता है, और बलप्रयोग करके गाय की जान बचा सकता है। कसाई की भेट वैश्य से होती है तो वैश्य प्रवचन दे नहीं सकता, बलप्रयोग कर नहीं सकता तथा झूठ बोलकर उत्तर की ओर भागी गाय का दक्षिण की ओर गई बताकर गाय की जान बचा सकता है । शूद्र से यदि भेंट हुई तो वह कह सकता है कि उसने नहीं देखा। इस उदाहरण से आप अपने प्रश्न का उत्तर खोज सकते है।

5– आपने नस्ल सुधार लिखा इसका कोई प्रमाण है क्या?

उत्तरः–प्राचीन समय में अनुलोम विवाह की छूट थी, और प्रतिलोम वर्जित था। उच्च वर्ण का लड़का निम्न वर्ण की लड़की से विवाह कर सकता था तथा बहुविवाह भी कर सकता था, किन्तु निम्न वर्ण का लड़का उच्च वर्ण की लड़की से विवाह नहीं कर सकता था। उच्चवर्ण में पुरुष प्रधान परिवार व्यवस्था थी तो निम्न वर्ण में महिला प्रधान परिवार

व्यवस्था। उच्च वर्ण में हमेशा लड़की पति परिवार में जाती थी, तो निम्न वर्ण में प्रायः लड़का पत्नी परिवार में जाता था। यह व्यवस्था सम्पूर्ण समाज में मान्य थी। साधु संत, मंदिरों के पुजारी, आमतौर पर अविवाहित होते थे। ऐसे आश्रम भी गुप्त रुप से नस्ल सुधार का काम करते थे। समाज में ऐसे आश्रमों की गतिविधियों को बुरा नहीं माना जाता था, न ही उसकी कोई चर्चा होती थी। मुझे ऐसा लगा कि ये सारी योजना नस्ल सुधार के आधार पर थी। वर्तमान समय में भी एक धार्मिक संगठन ऐसा है जो सुप्रजनन का प्रचार करके इस योजना को मान्यता देता है। इस संबंध में यदि और प्रश्न आयेंगे तो उनका उत्तर देने का प्रयास होगा।

6 कुलदीप रमोला जी, उत्तरकाशी, उत्तराखण्ड

प्रश्नः— मुझे लगता है कि वर्ण व्यवस्था ही गलत है, चाहे ये वर्तमान समय की हो या भूतकाल की हो। क्योंकि व्यक्ति के ज्ञान में कभी भी परिवर्तन हो सकता है और उसके श्रम में भी उसी प्रकार बदलाव आ सकता है। अतः इस प्रकार यदि हम भूतकाल की वर्ण व्यवस्था की बात करें तो फिर मानव का वर्ण बदलता रहेगा और आज तो ये जन्म आधारित हो गया है। मेरी समझ में ये नहीं आया कि आखिर इसकी आवश्यकता क्या है? जहॉ भूतकाल में यह संघर्ष और अस्थायित्व का प्रतीक था आज वह घृणा का प्रतीक है। मेरा केवल इतना कहना है कि एक परमेश्वर की संतान में इतनी भिन्नता क्यों? भले कर्म अलग—अलग क्यों न हो परन्तु आखिर मानव तो मानव ही है ना। जब बनाने वाले ने भेद भाव नहीं किया तो फिर क्यों ये जातियॉ क्यों ये धर्म? बस किसी को छोटा दिखाने के लिये?

उत्तरः— मैंने लिखा है कि जन्म अनुसार वर्ण का निर्धारण गलत है और योग्यतानुसार वर्ण निर्धारण होना चाहिए, जो आज भी होता है। आज भी अनेक स्कुलों में प्रवेश के लिए प्रीटेस्ट होता है। यदि उस समय भी वर्ण निर्धारण के लिए कोई प्रीटेस्ट होता था तो क्या गलत है। आज सिर्फ क्षमता का ही प्रीटेस्ट होता है गुण और स्वभाव का नहीं। यदि गुण और स्वभाव के आधार पर प्रीटेस्ट लेकर उन्हें तदनुसार अलग—अलग शिक्षा दी जाये तो मेरे विचार में बहुत अच्छा होगा। मैं मानता हूॅ कि वर्णव्यवस्था वर्तमान समय में अव्यवस्थित हो गई है। उसे व्यवस्थित करने की आवश्यकता है। आपने शब्द प्रयोग पर आपत्ति की है, मैं आपसे सहमत हूॅ । मैंने लिखा है कि ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जैसे रुढ और बदनाम नामों से किनारा कर लेना चाहिए तथा नये नाम दिये जाने चाहिए। मैंने विद्वान राजनीतिज्ञ, व्यवसायी, श्रमिक जैसे नाम सुझाये है। इनकी जगह कोई अन्य नाम भी रखा जा सकता है किन्तु मेरे विचार से संशोधित वर्ण व्यवस्था तो होनी ही चाहिए भले ही नाम कुछ भी क्यों न हो।

आपके कथनानुसार ईश्वर ने सबको समान बनाया किन्तु मेरे विचार से आज तक ऐसा कभी नहीं हुआ जब कोई दो व्यक्ति पूरी तरह समान हो। यहॉ तक कि वर्तमान में भी नहीं। यहॉ तक कि शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक स्तर पर भी नहीं। यहॉ तक कि जुडवा भाई भी पूरी तरह समान नहीं होते। जब ईश्वर ने ही पूरी तरह समान नहीं बनाया तो हम किन्हीं दो व्यक्तियों को पूरी तरह समान कैसे कह सकते है। मैं इस बात से सहमत हूॅ कि सहजीवन में ऊॅच—नीच का व्यवहार नहीं होना चाहिए। किन्तु इसका यह आशय नहीं कि मूर्ख और विद्वान के बीच कोई फर्क किया ही न जाये।

पत्रोत्तर

1 हरिराम शर्मा, झुंझुनू, राजस्थान ज्ञानतत्व—760092

विचार— ज्ञानतत्व के अंक नियमित प्राप्त होते रहते हैं। पाठकों को वैचारिक खुराक प्रदान कर वैचारिक विवेक जागृत करने में आपके सुविचारित विश्लेषण अद्वितीय होते हैं। किसी भी पहलू के पक्ष—विपक्ष पर संतुलित विश्लेषण सत्य तक पहुॅचने में सहायक होता है। हमारे कस्बे के पुस्तकालय के पाठकों के एक वर्ग के मध्य आपके आलेखों पर खुली चर्चा होती है और आपके विचारों से सभी सहमति व्यक्त करते हैं। किसी आगामी अंक में यह प्रश्न और उसका समुचित उत्तर प्रकाशित करने का अनुग्रह करें?

प्रश्न 1— स्विट्जरलैंड में राष्ट्रीय जनमत संग्रह में वहॉ के नागरिको ने बिना काम किये मुफ्त में आर्थिक भत्ता लेने के विरुद्ध भारी बहुमत से फैसला दिया। इसके उलट भारत में राजनैतिक दलों द्वारा मुफ्त की रेवडियॉ बांटने की होड लगी है। अत्यंत समृद्ध लोग भी फर्जी बी0 पी0 एल0 कार्ड बनवा कर देय लाभ लेने को यहॉ लालायित पाये जा सकते है। स्विट्जरलैंड की तुलना में हमारे राष्ट्रीय चरित्र की यह विडम्बना ही तो है। आप भी प्रतिमाह दो हजार रु हर नागरिक को देने का सुझाव देते हैं। क्या यह नागरिको को निठल्ला नहीं बनायेगा?

उत्तरः— स्विट्जरलैंड के बहुमत ने मुफ्त में सुविधाऍं लेना ठीक नहीं माना दूसरी ओर भारत में ऐसा लगातार जारी है तथा हम भी सारी सुविधाओं को रोककर दो हजार रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिमाह मुफ्त देने का प्रस्ताव कर रहे हैं। ये दोनों बातें सच होते हुए भी अलग—अलग हैं। वहॉ का न्यूनतम जीवन स्तर भारत के न्यूनतम जीवन स्तर से कई गुना अधिक ऊॅचा है। भारत में प्रतिदिन तीस रु से भी कम पर जीने वालों की संख्या बीस करोड़ है जबकि वहॉ ऐसे

लोगों की संख्या शून्य है। भारत में आर्थिक विषमता का फर्क बहुत अधिक है जबकि वहॉ कम। भारत में श्रम और बुद्धि के बीच भी बहुत ज्यादा फर्क है जबकि वहॉ कम। भारत में एक दिन का श्रम मूल्य औसत आठ किलो अनाज है जबकि वहॉ इससे कई गुना अधिक।

हमारा प्रस्ताव मुफ्त देने के उद्देश्य से नहीं हैं। हमारा मुख्य प्रस्ताव है कृत्रिम उर्जा की ढाई गुना मूल्य वृद्धि। हम मानते है कि ऐसा करने से श्रम की मांग, मूल्य और सम्मान बढेगा। इस अतिरिक्त प्राप्त धन को हम समान वितरण का सुझाव दे रहे हैं। हम उस प्रस्ताव के विरुद्ध हैं जो किसी अन्य तरीके से अमीरों से धन लेकर बांटने की मांग करते हैं। इससे श्रम की मांग और मूल्य नहीं बढेगा। हमारा प्रस्ताव है कि अनेक अलग–अलग तरीके से सुविधाएँ देना बन्द करके उक्त सारा अतिरिक्त धन समान रुप से बांट दिया जाये।

मैं आपके इस निष्कर्ष से सहमत नहीं कि मुफ्त धन मिलते ही लोग काम करना बंद कर देंगे। आज भी बडी संख्या में ऐसे लोग हैं जो आर्थिक दृष्टि से मजबूर न होते हुए भी लगातार काम करते हैं। ऐसे लोगों को यदि अतिरिक्त धन मिल जाये तब भी वे काम बंद नहीं करते। समाज के जो लोग प्रगति के लिये प्रतिस्पर्धारत हैं वे काम करते हैं किन्तु जिन लोगों ने अपना भविष्य खाने और शराब पीने तक सीमित मान लिया है वे काम नहीं करेंगे। वर्तमान में ऐसा दिखता है कि बडी संख्या में गरीब तबका अपनी ऐसी ही सीमा समझ रहा है। एक बार उन्हें पैसा देकर देखिये तो उनमें से बहुत बडी संख्या अपनी सीमाएँ तोड देगी तथा प्रगति के लिये नये–नये सपने देखकर प्रतिस्पर्धा में कूद पडेगी। जो नहीं कूदेंगे उन्हे भी हम कुछ अलग से न देकर वर्तमान सुविधाओं को मात्र एकीकृत ही तो कर रहे हैं।

मेरा सुझाव है कि हम स्विट्जरलैंड जैसे श्रम अभाव देश को देखकर भारत जैसे श्रम बहुल देश की अर्थनीति बनाने से बचें। श्रम और बुद्धि के बीच की खाई पटनी ही चाहिये तथा इसके लिये कृत्रिम उर्जा मूल्य वृद्धि सबसे अच्छा समाधान है।

2 चितरंजन लाल भारती, पंचग्राम, असम, ज्ञानतत्व–1015

ज्ञानतत्व के अंक 01–15 जून 2016 में आपने कुलदीप नैयर के वक्तव्यों पर सार्थक टिप्पणी की है। कोई भी सजग जागरुक व्यक्ति आपके मतों से सहमत होगा। दिक्कत यह है कि पंजाब केसरी की प्रसार संख्या लाखों में है, जबकि ज्ञानतत्व कुछ हजार की है। कुलदीप नैयर एक अंर्तराष्ट्रीय व्यक्तित्व हैं और बजरंग मुनि एक सीमित दायरें में हैं। इसलिए जरुरत है कि ज्ञानतत्व की प्रसार संख्या लाख तक बढाई जाए।

वैसे आपने जो प्रत्युत्तर दिया, वह सशक्त है, कश्मीर संबंधी सामान्य ज्ञान को बढाने वाला है और समाधान के रुप में है।

काश मुनि बजरंग जैसे लोग शीर्ष पर होते।

उत्तर– नई योजना बन रही है। संभावना है कि एक दो वर्षो में ही ज्ञानतत्व की पाठक संख्या लाख को पार कर सकती है।

3– जी.पी.गुप्ता, सागर, मध्य प्रदेश

विनम्र निवेदन है कि चेक कमांक 237360 दिनांक 23.7.2016 की शिवदर्शन प्रसाद तिवारी, पता स्वामी विवेकानंद कालेज, डी डी नगर मकरोनिया, सागर मध्य प्रदेश ज्ञानतत्व पत्रिका के लिए आजीवन सदस्य बने है। उनका चेक संलग्न कर 500/ का भेजा जा रहा है। कृपया प्राप्ति से सूचित करें।

विन्दुवन में सागर अथवा म0प्र0 के सदस्यों की सूची भेजने वावत निवेदन किया था। आपने बताया था कि चूँकि कंप्यूटर दिल्ली चला गया तो वहॉ से शीघ्र भेज देंगे किन्तु अभी तक अप्राप्त है। जून, जुलाई का महिना अस्वस्थता में बीता जिससे कुछ कार्य नहीं कर सका।

ज्ञानतत्व का 338 अंक प्राप्त हुआ है उसमें आपने सकियता व गिलहरी के रुप में कार्य करने लगने के लिए आपने भूमिका के विषय में सक्षमता चाही है।

अतः मेरी सामर्थ्या आप पर है। आप जैसा चाहे हमें नचा सकते हैं। अभी एक माह बाद दिल्ली का पत्र आया जिस पर शीघ्र सुझाव आदि मांगा गया था। आगे सम्पर्क कर उन्हें अवगत कराउंगा।

4 देवेन्द्र शर्मा, कृषि विशेषज्ञ एवं पर्यावरणविद, दैनिक भास्कर से

प्रश्नः–जरा इस पर विचार करें कि जब से आर्थिक सुधार लागू हुए हैं, इन वर्षो में किसी दफ्तर में काम करने वाले भृत्य की औसत मासिक बेसिक आय 7500 रु से बढकर 18 हजार रु हो गई है और केबिनेट सचिव की आय 80 हजार रु से बढकर 2.50 लाख रु हो गई है। हालांकि, सरकारी कर्मचारी की वेतनवृद्धि का आर्थिक उदारीकरण से

कोई संबंध नहीं है, फिर भी मैं देखता हूॅ कि सरकारी कर्मियों की वेतनवृद्धि को आर्थिक सुधार के शानदार नतीजे के रुप में दिखाया जाता है।

अब इसकी तुलना खेती से किसान को होने वाली आमदनी से करें। 2016 का आर्थिक सर्वेक्षण हमें बताता है कि किसान को अपनी कृषि गतिविधियों से होने वाली आय देश के 17 राज्यों में 20 हजार रु सालाना है। इसमें वह अनाज भी शामिल है, जो वह अपने परिवार के लिए निकालकर रख लेता है। दूसरे शब्दों में इन राज्यों में किसान की मासिक आय सिर्फ 1,666 रु है। राष्ट्रीय स्तर पर एन.एस.एस.ओ ने किसान की मासिक आय प्रति परिवार सिर्फ तीन हजार रु आकी है। निश्चित ही किसान की यह दयनीय स्थिति आर्थिक सुधारों का नतीजा है। सरल शब्दों में कहें तो आर्थिक उदारता या सुधार या बाजार अर्थव्यवस्था, आप जो भी नाम देना चाहें, ने बहुसंख्यक आबादी की अन्देखी की है। अन्य असंगठित क्षेत्रों की तरह कृषि भी इसकी सबसे बडी शिकार है।

जुलाई 1991 में डॉ0 मनमोहन सिंह ने वित्त मंत्री के रुप में ऐतिहासिक भाषण देकर देश की अर्थव्यवस्था को खोल दिया था। मुझे याद है कि उन्होंने उद्योगों को नियंत्रण की बेडियों से मुक्त किया था और उन पर रियासतों की वर्षा सी कर दी थी और फिर अगले ही पैराग्राफ में माना था कि कृषि अब भी अर्थव्यवस्था का आधार है, किन्तु कृषि राज्यों का विषय है। उन्होंने खेती के लिए आवश्यक प्रोत्साहन देने का मुद्दा राज्यों पर छोड दिया। यह पक्षपात साफ नजर आया। निश्चित ही उदारीकरण का यह अनसोचा असर नहीं था बल्कि यह तो योजना का हिस्सा था। बाद में 1996 में विश्व बैंक ने भारत को निर्देश दिया कि वह अगले 20 वर्षो में 40 करोड़ लोगों को ग्रामीण से शहरी क्षेंत्रों में स्थानांतरित करें। तर्क यह था कि भूमि बेशकीमती संम्पत्ति है और उसे अक्षम उत्पादों यानी किसानों की युवा पीढी को खेती के अलावा कुछ आता नहीं था। विश्व बैंक ने सुझाव दिया कि भारत प्रशिक्षण संस्थानों का जाल बिछाए ताकि ये युवा औद्योगिक श्रमिक बन सके। इसके साथ भूमि को किराए पर देने और उनके अधिग्रहण की शुरुवात होनी चाहिए।

एक के बाद एक आने वाली सरकारें विश्व बैंक के नुस्खे पर आंख मूंदकर चल रही है। प्रधानमंत्री के पद पर रहते हुए मनमोहन सिंह ने बार–बार कहा था कि भारत में 70 फीसदी किसान अतिरिक्त हैं और उन्हें शहरी क्षेत्रों में ले जाना होगा। रिजर्व बैंक के गर्वनर रघुराम राजन कह चुके हैं कि बडा सुधार तो तब होगा जब भारत खेती करने वाली आबादी के बडे हिस्से को शहरों में बसाएगा। हाल ही में वित्त मंत्री अरुण जेटली ने खेती को दोष दिया है कि वह आबादी के बडे हिस्से को जीवन आधार न देकर विषमता बढाने की दोषी है। वे यह बताना भूल गए कि सरकारों ने जान बूझकर खेती को वित्तीय संसाधनों से वंचित रखकर कृषक समुदाय को गरीब बनाए रखा। बजट प्रावधानों में खेती को दी जाने वाली कम प्राथमिकता से यह स्पष्ट है। 11वी योजना में खेती को पांच साल में बजट प्रावधान में सिर्फ 1 लाख करोड रु ही मिले। 12 वी योजना के पांच वर्षो में खेती करे 1.5 लाख करोड रु मिले। संयोग से 52 फीसदी आबादी वाली खेती को मिलने वाला बजटीय समर्थन मनरेगा के वार्षिक प्रावधान से कम है। इस पर गेहूॅ और चावल का न्यूनतम समर्थन मूल्य लगभग स्थिर ही है, क्योंकि उपज नहीं जाती। आश्चर्य नहीं कि विकल्प मिलने पर 48 फीसदी किसान खेती छोड़ना चाहते है।

वास्तविकता तो यह है कि कृषि का ऐसा हश्र जान बूझकर किया गया है बल्कि सारे आर्थिक सुधारों को कृषि की दुर्गति से सहारा मिला है। यदि खेती को अधिक न्यूनतम समर्थन मूल्य के जरिये उसका हक दिया होता तो औधोगिक व व्यावसायिक क्षेत्रों को नतीजा भुगतना पडता, क्योंकि उंची खाद्य कीमतों के कारण मजदूरी अधिक देनी पड़ती, कृषि उपज बढ़ जाती। कृषि में मजदूरी बढती तो शहरों की ओर पलायन कम हो जाता तथा आधारभूत ढांचे व निर्माण क्षेत्र के लिए सस्ता श्रम नहीं मिलता। स्वामीनाथन समिति की उत्पादन लागत पर 50 फीसदी मुनाफे की सिफारिश लागू करने के प्रति उदासिनता भी इसी चिंता का नतीजा है। सुप्रीम कोर्ट में सरकार ने लिखकर दिया है कि उंची कीमतें देने से बाजार अस्थिर हो जायगें। इसीलिए केन्द्रीय खाद्य व उपभोक्ता मंत्रालय ने राज्यों से कहा है कि वे समर्थन मूल्य के अलावा गेहूॅ व चावल पर कोई बोनस न दें। इस तरह आर्थिक सुधारों की असली लागत तो ग्रामीण भारत चुका रहा है, जिसमें बहुसंख्यक किसान हैं। पहले सामाजिक आर्थिक सर्वेक्षण में यह विरोधाभास साफ पता चलता है। मानव विकास सूचकांक पर भारत 188 देशों की सूची में 130 वें स्थान पर हैं। जिन आर्थिक सुधारों की हम बात करते हैं उनमें देश की 51 फीसदी संपत्ति का फायदा 1 फीसदी धनी वर्ग को मिल रहा है। सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों को अर्थव्यवस्था को तेजी देने वाला माना जा रहा है क्योकि इससे उपभोक्ता सामान की मांग बढने की अपेक्षा है। कल्पना करें कि खेती में आमदनी बढने से भारतीय अर्थव्यवस्था को कितना अधिक बढ़ावा मिलेगा। सच तो यही है कि खेती में ही अर्थव्यवस्था को तेजी देने की क्षमता है।

दुर्भाग्य यह है कि जाने अनजाने कृषि को ही आर्थिक सुधारों के मौजूदा दौर को चलाए रखने के लिए बलिदान देने पर मजबूर किया जा रहा है। दूसरे शब्दों में 60 करोड किसान विषमता पैदा करने वाले आर्थिक सुधारों की कीमत चुका रहे हैं।

उत्तरः– मैं नहीं जानता था कि भारत सरकार जानबूझकर किसी योजना के अन्तर्गत शहरों की ओर ग्रामीण आबादी का पलायन कर रहीं हैं। वह योजना भी विश्व बैंक के निर्देशानुसार बनी है, यह बात भी मैं पहली बार ही सुन रहा हूॅ। कृषि के विरुद्ध यह योजना क्यों बनी तथा इसके गुण दोष क्या हैं यह विचार मंथन का विषय है किन्तु यह बात स्पष्ट होनी ही चाहिये कि आज हम सब जिस कृषक उत्पीड़न, शहरी आबादी वृद्धि, या अन्य कुछ समस्यों को समस्या समझ रहें हैं वे सब किसी परिणाम के अन्तर्गत बनाई गई योजना के परिणाम हैं, समस्या नहीं। सरकारे इन्हे समस्या बताकर समाधान की जो बातें करती हैं वे उनका ढोंग हैं।

आप कृषि एवं पर्यावरण के विशेषज्ञ है और मैं श्रमजीवियों की अधिक चिंता करता हूॅ। मैं मानता हूॅ कि कृषि संबंधी जो बाते आपने लिखी है वे सही है किन्तु मैं यह समझता हूॅ कि कृषि की अपेक्षा श्रम की अधिक अवहेलना हुई हैं तथा श्रमजीवी अधिक परेशान है। बहुत प्राचीन समय में भी प्राथमिक स्तर पर वर्ण व्यवस्था में दो ही वर्ग थे– 1. श्रमजीवी 2. बुद्धिजीवी। श्रमजीवी वह व्यक्ति माना जाता था जो किसी बुद्धिजीवी को श्रम बेचता था। दूसरी ओर बुद्धिजीवी वह माना जाता था जो किसी का श्रम खरीदता था। बीच में भी कुछ लोग थे जो पूरी तरह अपने श्रम पर ही जीवित रहते थे। चाहे वे बौद्धिक श्रम करते हो या अपने श्रम में ही आंशिक बुद्धि का उपयोग करते हो तथा न वे श्रम खरीदते हो, नही बेचते हो। ऐसे अनेक लोगों को श्रमजीवी या बुद्धिजीवी में अलग–अलग करना कठिन कार्य था।

वर्तमान समय में कृषि को एक इकाई मानकर निष्कर्ष निकालना ठीक नहीं क्योंकि आज भी दो विपरीत बातें एक साथ सत्य है–

पहला कृषि उत्पादन लगातार तेजी से बढ रहा है। मैं नहीं समझा कि दोनों एक साथ कैसे संभव हो रहा है। यदि किसान आत्महत्या कर रहा है तो श्रमजीवी आत्महत्या क्यों नहीं कर रहा है। इसका अर्थ है कि भारत में छोटे किसानों की स्थिति श्रमजीवियों की अपेक्षा अधिक खराब है तथा बडे किसानों की स्थिति बहुत अच्छी है। इसका अर्थ हुआ कि जिस तरह लघु उद्योग मरना सच है, छोटे व्यापारी परेशान है। उसी तरह छोटे किसान भी परेशान है और सरकार ने किसान योजना के अन्तर्गत छोटे किसानों को श्रमजीवी बनने की ओर प्रेरित करने की योजना बनाई होगी।

इन सब बातों के होते हुए भी मैं महसूस करता हूॅ कि कृषि उत्पादन को और अधिक लाभकारी मूल्य दिया जाना चाहिए था क्योंकि कृषि श्रम का अधिक समायोजन कर सकती है। इससे उत्पादन भी बढेगा और श्रम की मांग भी बढेगी।

मैं समाज को कृषि और उद्योग में विभाजित नहीं करना चाहता बल्कि श्रमजीवी और बुद्धिजीवी के बीच विभाजित करना चाहता हूॅ। मेरा ऐसा मानना है कि कृत्रिम उर्जा सस्ता होना श्रमजीवियों के विरुद्ध बुद्धिजीवियों का षड़यंत्र है। कृत्रिम उर्जा को महंगा न करके आम कृषि उत्पादों पर भारी कर लगाना बहुत घातक है यदि कृषि उत्पादों पर से सारे टैक्स हटा दिये जाये तथा तदनुसार कृत्रिम उर्जा की भारी मूल्यवृद्धि कर दी जाये तो लगभग सभी आर्थिक समस्याओं का समाधान संभव हैं। हमें उन बातों पर गंभीरता से विचार करना चाहिए जिनके आधार पर भारत सरकार ने विश्व बैंक की बात मानी और ऐसे कदम उठाये तथा जो आज हमारे समक्ष समस्या के रुप में खडे है। मुझे तो संदेह होता है कि कहीं किसी विदेशी दबाव के कारण ही तो 70 वर्षो से भारत की सरकारे कृत्रिम उर्जा को महंगा न करके कृषि उत्पादों पर भारी कर लगाती है। यदि ऐसा कुछ है तो यह गंभीर चिंता का विषय है और इस पर चर्चा होनी चाहिए।

उत्तरार्ध

निवेदन,

आप ज्ञान तत्व के पाठक है । या तो आपसे कभी प्रत्यक्ष मुलाकात और चर्चा नही हो पायी या लम्बे समय से प्रत्यक्ष संपर्क नही हुआ। मेरा भी आना जाना दिल्ली न के बराबर होता है। मेरी इच्छा है कि एक बार आपसे प्रत्यक्ष मुलाकात और कुछ संक्षिप्त चर्चा हो सके । मै दिनांक 24 सितम्बर तथा 26 सितम्बर को अपने बदरपुर कार्यालय मे उपलब्ध रहुंगा। इस बीच हमारे कुछ साथियो ने दिल्ली मे ही आई टी ओ के पास 24 सितम्बर की शाम पांच बजे से सात बजे तक वहां एक विषय पर मेरे विचार तथा उसपर सामुहिक चर्चा का आयोजन किया है। मै उस चर्चा मे भी रहूॅगा। मै 24 सितम्बर को शाम 3 बजे से ही वहां उपलब्ध रहूॅगा। जिससे आपलोगो से भी कुछ संक्षिप्त मुलाकात संभव हो सके। मेरी इच्छा है कि आप कोई समय निकालकर प्रत्यक्ष चर्चा के लिये आने का कष्ट करे। यदि आप

किसी कारण से न आ सके तो आप अपना कोई निकट प्रतिनिधि भी भेज सकते है। वैसे यदि आप स्वयं आवे तो अधिक अच्छा होगा। विशेष परिस्थिति मे आप हमारे कार्यालय सचिव टीकाराम देवरानी से 8826290511 इस फोन नम्बर पर चर्चा भी कर सकते है।

स्थान– 24 सितम्बर दोपहर से 26 सितम्बर को शाम 4 बजे तक व्यवस्थापक राजपूत निवास, सुनिल डेयरी के सामने ए–20 फस्ट फलोर मोलर बंद इक्सटेंशन सेकेन्ड 60 फुटा रोड बदरपुर दिल्ली।

24 सितम्बर शाम 3 बजे से सात बजे तक हयुमन एडवांस मेंट इंस्टीट्यूट, 14 ए एस पी डब्लु डी निकट हिन्दी भवन विष्णु दिगम्बर मार्ग नई दिल्ली (निकट आई टी ओ मेट्रो स्टेशन गेट न0–2)।

निवेदक–बजरंग मुनि, मोबाइल नम्बर–9617079344